इकाई 4 व्यापारिक समुदाय और संगठन

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न की व्याख्या कर सकेंगे।

- प्रारंभिक मध्ययुगीन भारत के दो प्रमुख दौरों (ईसवी 700 से 900 और ईसीव 900 से 1300) में व्यापारियों व सौदागरों की तुलनात्मक स्थिति,
- व्यापारिक समुदायों की क्षेत्रीय विशेषताएं
- व्यापारियों की प्रमुख गतिविधियां
- व्यापारियों और सौदागरों के प्रकार
- व्यापारियों का व्यवहार व चरित्र
- उत्तर व दक्षिण भारत में व्यापारिक श्रेणियां व उनकी कार्य पद्धति, और
- शिल्पकारों और कारीगरों पर व्यापारियों का नियंत्रण

4.1 प्रस्तावना

इस खंड की इकाई 2 और 3 के द्वारा आर्थिक गतिविधियों में वाणिज्य और व्यापार की भूमिका और इसकी कस्बों और शहरों के विकास से संबंध की व्याख्या की गयी है। सामंती प्रवृत्तियों के सर्वांगीण विकास में उनकी भूमिका की भी व्याख्या की गयी है। इस इकाई को एक पूरक भाग के रूप में देखा जाना चाहिए। यहां व्यापारियों और सौदागरों की समाज में अलग-अलग भूमिका उनकी संगठित आर्थिक गतिविधियों के संदर्भ में समझाने की कोशिश की गयी है। सदियों में उनकी स्थितियों में उतार-चढ़ाव को भी दिखाया गया है। यह इकाई बड़े सौदागरों का छोटे कारीगरों और दस्तकारों पर व्यापक प्रभाव पर भी विशेष ध्यान देती है

4.2 व्यापारी एक कड़ी के रूप में

व्यापारी उत्पादक और उपभोक्ता के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी है। वे भिन्न-भिन्न क्षेत्र से

कृषि उत्पादों और दस्तकारों और कारीगरों द्वारा बनायी गयी चीज़ों को एकत्रित करते हैं और एक बड़े क्षेत्र में उसका वितरण करते हैं। वे सिर्फ तैयार माल का ही व्यापार नहीं करते, बल्कि कच्चे माल का भी व्यापार करते हैं। इस तरह अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मध्ययुगीन काल के प्रारंभिक दौर में बड़ी तादाद में छोटे और बड़े व्यापारी माल जमा करने और वितरण में लगे रहते थे। ये स्थानीय के अलावा अंतर्क्षेत्रीय होते थे, एक तरफ फेरी वाले, खुदरा विक्रेता और छोटे व्यापारी थे तो दूसरी तरफ बड़े सौदागर और बड़े-बड़े कारवां बना कर चलने वाले व्यापारी थे। व्यापारियों और सौदागरों की समाज में सापेक्ष स्थिति उन दोनों कालों की व्यापारिक गतिविधियों से जुड़ी हैं जिन्हें इकाई तीन में बताया गया है। उनकी भूमिका पर पहले दौर में (ईसवी 700 से 900) सीमित विनिमय के कारण विपरीत प्रभाव पड़ा था, जबकि दूसरे काल (ईसवी 900 से 1300) में व्यापार के पुनरुत्थान से व्यापारिक समुदायों की शक्ति, प्रभाव और प्रतिष्ठा में काफी वृद्धि हुई। प्राचीन भारतीय ग्रंथ वैश्यों के लिए कृषि और पशुपालन के साथ-साथ व्यापार को रोजी रोटी कमाने का वैधानिक तरीका बताते हैं। सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने वैश्यों को व्यापारी और शुद्रों को कृषक के रूप में बताया गया है। हालांकि दोनों वर्गों के करीब आने की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी और शुद्र शराब, मधु, नमक और जौ इत्यादि का व्यापार करने लगे थे गुप्त काल के बाद ब्राह्मणवादी वर्ण व्यावस्था बिखरन लगी थी और लोग वर्ण व्यवस्था से अलग हटकर दूसरा व्यवसाय अपनाने लगे थे। सभी वर्ग और जाति के लोग व्यापार करने लगे थे। कुछ लोगों को यह मजबूरी में अपनाना पड़ रहा था, जबकि दूसरे लोग इसे अन्य आर्थिक गतिविधियों से ज्यादा लाभप्रद पाते थे।

4.3 पहले दौर (ईसवी 700-900) में व्यापारियों की स्थिति

इन सदियों में व्यापार के सापेक्षिक पतन के कारण समाज में व्यापारियों की भूमिका काफी घट गयी थी। व्यापार के पतन और बाजार की कमी हो जाने के कारण व्यापारियों को मंदिरों और दूसरे उभरते जमींदारों की शरण में जाना पड़ा। इससे उनकी स्वतंत्र व्यापारिक गतिविधियां छिन गयीं और उन्हें अपने शरण देने वालों की जरूरतों और मांगों को पूरा करना पड़ा। उड़ीसा और मध्य भारत के कुछ अभिलेखों से पता चलता है कि व्यापारियों, कारीगरों और सौदागरों को स्थानीय भूमिपतियों का संरक्षण मिलने लगा था। इससे उनकी स्वतंत्र गतिविधियों में काफी कमी आई होगी। आठवीं व दसवीं सदी के दौरान ऐसे कोई भी महत्वपूर्ण प्रमाण नहीं मिलते हैं जिससे कि यह पता लगे कि व्यापारियों का प्रशासन में कोई हाथ था। जबकि बिहार और उत्तर प्रदेश में मिली मुहरों से पता चलता है कि गुप्त काल में उनकी महत्वपूर्ण प्रशासनिक भूमिका थी। हालांकि व्यापार बिल्कुल लुप्त नहीं हो गया था कुछ सौदागर विशेषकर खाड़ी तट पर सक्रिय थे लेकिन उनकी संख्या बहुत कम थी और वे अधिकतर राजाओं, सामंतों और मंदिरों के लिए विलासिता की जरूरतों को पूरा करते थे। उस समय के आलेखों में व्यापारियों के बहुत कम विवरण से पता चलता है कि दक्षिण भारत में भी इन सदियों में व्यापार एक महत्वपूर्ण गतिविधि नहीं थी। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रारंभिक मध्ययुगीन भारत के पहले दौर में धनी और स्वतंत्र सौदागर वर्ग पूरी तरह से लुप्त तो नहीं हुआ था लेकिन कम जरूर हो गया था।

4.4 दूसरे दौर (ईसवी 900 से 1300) में व्यापारियों की स्थिति

प्रारंभिक मध्ययुगीन भारत में दूसरे दौर में व्यापारी वर्ग एक बार फिर प्रमुख हो गया और हम पाते हैं कि बड़ी तादाद में सौदागर विलास और जरूरत का सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे। वे व्यापारिक विनिमय से काफी धन इकट्ठा कर चुके थे और मंदिरों और पुजारियों को उपहार देकर उन्होंने समाज में ख्याति अर्जित कर ली थी। उनमें से कईयों ने प्रशासन में सक्रिय भूमिका निभाई और कुछ राजदरबार में मंत्री भी बने।

उस काल के साहित्य और अभिलेखों में बड़ी संख्या में सौदागरों का विवरण है जो अपने विशेष व्यापार में संलग्न थे। इस तरह हम पाते हैं कि व्यापारी सोना, इत्र, शराब, अनाज, घोड़े, कपड़े, दही, पान इत्यादि के व्यापार में लगे हुए थे।

व्यापारिक गतिविधियों में सहायता के लिए सहायक या खुदरा व्यापारी नियुक्त किए। जैसे-जैसे अंतरक्षेत्रीय व्यापार बढ़ता गया व्यापारियों का एक विशिष्ट वर्ग सिक्कों के परीक्षण और विनिमय में लग गया।

उधार देना भी सौदागरों का एक प्रमुख काम हो गया। हालांकि लोग धार्मिक उद्देश्य जैसे कि फूल चढ़ाने, दिया जलाने आदि के लिए मंदिर के खजानों में पैसा जमा करते थे लेकिन कुछ ऐसे संदर्भ मिलते हैं जिसमें श्रेणी पैसे जमा करके उस पर सूद देती थी। पश्चिमी भारत में निक्षेप वणिक नामक सौदागरों का एक समूह उभरा जो बैंकिंग और उधार देने में पारंगत था। गुजरात के एक समकालीन ग्रंथ लेखापद्धति में एक ऐसे सौदागर के लड़के का वर्णन है जिसने अपनी पैतृक जायजाद से अपने हिस्से का दावा किया जिससे वह उधार देने का धंधा शुरू कर सके। मेधातिथि जो कि एक वैधानिक टीकाकार था, उधार देने वालों के निगम की बात बताता है। लेकिन समकालीन साहित्य उधार देने वालों का एक चित्र प्रस्तुत करता है और उन्हें अविश्वसनीय बताता है जो कि आम आदमी को पैसों की हेरा फेरी कर ठगते हैं।

इस काल में बहुत से क्षेत्रीय सौदागर समूहों का उदय हुआ जो अपने क्षेत्र के नाम से जाने जाते थे। ये मुख्यतः पश्चिम भारत से थे चूंकि इस क्षेत्र में बहुत से भू-मार्ग थे जो पश्चिमी तटों को पूर्वी भारत के बाजारों और शहरों से जोड़ते थे। इस लिए इस क्षेत्र के कुछ स्थान के सौदागरों ने यह पाया कि अंतरक्षेत्रीय व्यापार में दक्षता ज्यादा लाभप्रद है। इस तरह सौदागरों के ओसवाल नाम के समूह की उत्पत्ति ओसिया से हुई, पालीवाल की पतली से, श्रीमाली की श्रीमाला से और मोधा की मोधेंरा से हुई। उनमें से ज्यादातर लोग मारवाड़ी कहे जाते हैं। मारवाड़ी अर्थात् मारवाड़ के सौदागर। अपने क्षेत्रीय नाम के अलावा सौदागर लोग कई दूसरे नामों से जने जाते थे उनमें से दो हैं श्रेष्ठी और सर्थवाह। ये दोनों नाम काफी पहले से प्रचलित हैं। श्रेष्ठी एक धनी थोक व्यापारी था जो शहर में रहता था और अपना धंधा खुदरा व्यापारियों और एजेंटों के सहारे से करता था। समय-समय पर वह छोटे व्यापारियों को सामान और पैसा उधार देता था और इस तरह वह एक बैंकर का काम भी करता था। हालांकि जैसा हम पहले बता चुके हैं उधार देना एक अलग और विशेष धंधा बन गया था।

कारवां के नेता को सर्थवाह कहा जाता था जिसकी देखरेख में सौदागर सुदूर जगहों पर माल बेचने व खरीदने जाते थे। वह अत्यंत योग्य माना जाता था जिसे सिर्फ मार्ग का ही नहीं बल्कि भाषा और विभिन्न क्षेत्रों के विनिमय के नियमों का पता होता था। कृषि के विस्तार से और आठवीं और नवीं सदी के उपरांत उत्पादों की उपलब्धता से दक्षिण भारत में भी व्यापारिक विनिमय में वृद्धि हुई। इससे एक व्यापारिक समुदाय का उदय हुआ जो अपना पूरा समय स्थानीय विनिमय में लगाता था। यह वर्ग अंतर्क्षेत्रीय और अंतर्देशीय व्यापार में भी हिस्सा लेते थे। पूर्वी भारत के समान दक्षिण भारत में भी व्यापारियों ने कुछ खास वस्तुों जैसे कपड़ा, तेल या घी, पान के पत्ते, घोड़ों आदि के व्यापार में भी दक्षता हासिल कर ली। स्थानीय स्तर पर क्षेत्रीय बाजार जिन्हें नगरम कहा जाता था, विनिमय के केन्द्र थे। यह कृषि बस्तियों के पास थे जो न केवल आस-पास के क्षेत्रों से माल एकत्र करते थे बल्कि दूसरे क्षेत्रों से आने जाने वाले व्यापारियों से माल विनिमय भी करते थे। ग्यारहवीं व बारहवीं सदी में चोल काल के दौरान नगरम की संख्या में काफी वृद्धि हुई थी। यहां तक कि सभी तमिल व्यापारी नगरतार (जो कि नगरम् सभा का सदस्य होता था) के नाम से पहचाने जाने लगे।

बोध प्रश्न 1

1) सही वक्तव्यों पर ✓ का निशान लगाएं और गलत पर ✗ का निशान लगाएं।
   i) ईसवी 700-900 में व्यापारियों का समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान था।
   ii) चीनी यात्री ह्वेन सांग ने वैश्यों को व्यापारी और शूद्रों को खेती करने वालों के रूप में बताया है।
   iii) दूसरे दौर में (ईसवी 900-1300) सौदागर राजकीय प्रशासन में हिस्सा लेते थे।
   iv) श्रेष्ठी एक छोटा खुदरा व्यापारी था।
   v) नगरम् मुख्य व्यापारिक केन्द्र थे।

2) ईसवी 900-1300 के दौरान उधार देने के व्यवसाय पर पांच पंक्तियां लिखें।

....

....

....

....

....

4.5 व्यापारियों की सामाजिक-भूमिका

जैसे-जैसे व्यापार की वृद्धि हुई सौदागर आर्थिक रूप से सम्पन्न हो गए और वे सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए मंदिरों और पुजारियों के रख-रखाव और धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने लगे। ऐसे कई अभिलेख मिले हैं जिनमें सौदागरों द्वारा ऐसे अनुष्ठानों में नगद धन या वस्तुएं दिए जाने का संदर्भ है। कुछ सौदागर बहुत ही प्रभावशाली हो गए और राजकीय अधिकारी, तथा मंत्री तक बन गये। दसवीं सदी के एक अभिलेख में मोधा जाति के सौदागर का उल्लेख मिलता है जो कि महाराष्ट्र में संजन (थाणे शहर के निकट) नामक स्थान का प्रधान था। गुजरात के विमला नामक सौदागर परिवार ने उस क्षेत्र के राजनीतिक व सांस्कृतिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वह व उनके वंशज वस्तुपाल और तेजपाल के दरबार के महत्वपूर्ण मंत्री थे और वे माउन्ट आबू में संगमरमर का मंदिर बनवाने के लिए प्रसिद्ध हैं। यह मंदिर जैन देवताओं के लिए समर्पित है। मध्य गुजरात से मिले तेरहवीं सदी के एक अभिलेख से यह पता चलता है कि कई महत्वपूर्ण सौदागर, व्यापारी और दस्तकार स्थानीय प्रशासनिक इकाईयों में महत्वपूर्ण भूमिका रखते थे।

व्यापारियों का व्यवहार व चरित्र

विदेशी लेखकों और यात्रियों जैसे अल-इदरीसी (बारहवीं सदी) और मारको पोलो (तेरहवीं सदी) भारतीय व्यापारियों की अपने व्यापार में ईमानदारी और सच्चाई के लिए तारीफ करते हैं किन्तु हम समकालीन भारतीय साहित्य में बेईमान व लालची सौदागरों का जिक्र भी पाते हैं। कश्मीरी लेखक क्षेमेन्द्र ने एक ऐसे ही स्वार्थी सौदागर की चर्चा की है जो अकाल या कोई अन्य विपदा के आने पर खुश होता था क्योंकि उसे आशा रहती थी कि वह जमा किए हुए अनाज से काफी पैसा कमा सकेगा। पश्चिमी भारत का ग्यारहवीं सदी का ग्रंथ सौदागरों को उनकी स्थिति और चरित्र के आधार पर दो भागों में बांटता है — उच्च और निम्न। यह बताता है कि धनी सौदागर जो बड़े पैमाने पर समुद्र या स्थल मार्गों द्वारा व्यापार करते थे वे काफी विख्यात थे जबकि छोटे सौदागर जैसे फेरीवाले और खुदरा व्यापारी जो लोगों को नकली बाटों का इस्तेमाल करते ठगते थे वे समाज में तिरस्कार की नजर से देखे जाते थे। कारीगर लोगों को भी बेईमान लोगों की श्रेणी में रखा जाता था। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इनमें से कुछ विचार उस समय की सामंती प्रवृत्तियों को दर्शाते हैं जिसमें अपने हाथ या अपने संसाधनों से काम करने वाले लागों को तिरस्कार से देखा जाता था।

4.6 व्यापारियों का संगठन

सौदागरों की शक्ति व सम्मान का स्रोत सिर्फ धन नहीं था बल्कि उनके द्वारा बनाई गई श्रेणियों से था जो उनके हितों की रक्षा करती थीं। पहले दौर में व्यापार के पतन से व्यापारियों की गतिविधियां कमजोर हो गयी थीं और कई श्रेणियां मात्र क्षेत्रीय या पेशेगत उप-जाति के रूप में रह गई थीं। लेकिन जैसे ही दूसरे दौर में व्यापार पुनर्जीवित हुआ व्यापारिक श्रेणियां उस समय के आर्थिक जीवन का महत्वूर्ण भाग बनकर उभर आईं।

4.6.1 श्रेणियां : परिभाषाएं और कार्य

व्यापारिक श्रेणियां क्या थीं? इनकी कार्य पद्धति क्या थी? इनके सदस्यों को इससे फायदा

मिलता था? ये ऐसे महत्वपूर्ण सवाल हैं हम जिनके जवाब प्राप्त करने के प्रयास करेंगे। ये श्रेणियां समान प्रकार के माल जैसे अनाज, कपड़े, पान के पत्ते, घोड़े, इत्र आदि का व्यापार करने वाले व्यापारियों की सवैच्छिक श्रेणियां थी। इसकी स्थापना स्थानीय व भ्रमणशील सौदागर करते थे। स्थानीय सौदागरों द्वारा बनाई गई श्रेणियां स्थायी होती थीं जबकि भ्रमणशील सौदागरों की श्रेणियां एक खास यात्रा के लिए बनाई जाती थीं और यात्रा के अंत में उन्हें भंग किया जाता था। श्रेणियां अपनी सदस्यता और कार्य पद्धति के लिए खुद नियम और कानून बनाती थीं। वे माल का दाम तय करती थीं और यह भी तय करती थीं कि किसी खास दिन इसके सदस्य किसी खास माल को नहीं बेचेंगे। अगर श्रेणियां पाती थीं कि स्थानीय अधिकारी का रवैया द्वेषपूर्ण और असहयोगपूर्ण है तो कभी-कभी एक खास क्षेत्र में व्यापार करने से मना कर देती थीं। व्यापारी श्रेणियां धार्मिक हितों के संरक्षण का काम भी करती थीं। अभिलेखों में कई ऐसे उद्धरण मिलते हैं जब श्रेणियों ने सामूहिक रूप से अपने माल की खरीद बिक्री पर मंदिर के रख-रखाव या अनुष्ठान के लिए अतिरिक्त कर देने के लिए निर्णय लिये। श्रेणियां आमतौर पर एक प्रमुख के अधीन काम करती थीं जिसका चुनाव श्रेणियों के सदस्य करते थे। श्रेणियों के आर्थिक मामलों को तय करने में यह प्रमुख प्रधान न्याय अधिकारी की भूमिका निभाता था। यदि सदस्य श्रेणियों के नियमों को तोड़ते थे तो वह श्रेणियों के सदस्यों को सजा दे सकता था, निंदा कर सकता था या उनको निकाल सकता था। उसका एक मुख्य कार्य था राजा से सीधा संबंध बनाए रखना और अपने साथी सौदागरों की ओर से बाजार की चुंगी और कर को तय करना। व्यापारिक गतिविधियों के विकास से श्रेणियों के प्रमुख को समाज में अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा बढ़ाने में सहायता मिली और उनमें से कई स्थानीय प्रशासनिक परषिदों में अपने सदस्यों के प्रतिनिधियों का काम भी करते थे।

श्रेणियों के सदस्यों को एक कठोर नियम के तहत काम करना पड़ता था। वे अपनी तरफ से कार्य में कोई पहल नहीं कर सकते थे। लेकिन इससे उन्हें कई तरह के लाभ मिलते थे। उन्हें अपनी आर्थिक गतिविधियों में श्रेणियों का पूरा समर्थन प्राप्त था। इस तरह वह स्थानीय अधिकारियों द्वारा परेशान नहीं किये जाते थे, जबकि एक फेरी वाले की तुलना में श्रेणी की सदस्यता के कारण बाजार में उनकी ज्यादा साख रहती थी। इसके बावजूद श्रेणियों के प्रमुख का रवैया रूखा और कठोर होता था। सौदागरों के लिए श्रेणियां आर्थिक व शारीरिक संरक्षण का साधन थीं। उस समय के लेख व टीकाओं में व्यापारियों की श्रेणियों के भिन्न-भिन्न नाम हैं जैसे नाइगमा, अहेवनी, समूहा, सार्थ, संघ आदि। नाइगमा ऐसे कारवां सौदागरों का संघ था जो कई जाति के थे और दूसरे देशों से व्यापार करने के लिए साथ-साथ चलते थे। मेधातिथि के अनुसार श्रेणी व्यापारियों, उधार देने वालों और कारीगरों का एक समूह था। जबकि कुछ लेखकों का मानना था कि यह सिर्फ कारीगरों का समूह था। लेखापद्धति के अनुसार पश्चिम भारत के राजाओं ने अपने क्षेत्र में इन श्रेणियों की कार्य पद्धति की देखरेख के लिए श्रेणी—कर्ण नामक विशेष विभाग की व्यवस्था की थी। एक अन्य ग्रंथ मानासोलासा बताता है कि कई व्यापारी श्रेणियां अपनी सुरक्षा के लिए सेना (श्रेणी वाला) रखती थीं। अभिलेखों में सौदागरों की व्यापारिक गतिविधियों की भी चर्चा है। पश्चिम भारत के अभिलेखों में वणिक-मंडल की चर्चा की गयी है जो शायद स्थानीय सौदागरों की श्रेणी थी।

4.6.2 दक्षिणी भारत में व्यापारिक श्रेणियों के संगठन

दक्षिण भारत में कृषि के विस्तार से और व्यापार की वृद्धि से दसवें दशक में कई व्यापारिक श्रेणियों का उदय हुआ। अभिलेखों में इन संगठनों को समाया कहा गया है जिसका मतलब सदस्यों के बीच सहमति या अनुबंध से पैदा हुआ संगठन जिसमें उसके सदस्यों को कुछ नियम व कानून मानने होते हैं। दक्षिण भारत की दो महत्वपूर्ण श्रेणियां हैं, अयावोले और माणिग्रमण। भौगोलिक रूप से उनका कार्य क्षेत्र वर्तमान महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु और दक्षिण आंध्र प्रदेश था। दसवीं सदी के उपरांत चोल राजाओं ने व्यापारिक मिशन, समुद्री यात्रा और चुंगी समाप्त करके व्यापार और वाणिज्य बढ़ाने की कोशिश की। इससे इन श्रेणियों की गतिविधियां काफी बढ़ गयीं क्योंकि वे अंतर्क्षेत्रीय के अलावा बंगाल की खाड़ी के पार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार भी करने लगे।

आयावोले श्रेणी ऐहोले के पांच सौ स्वामियों की "नाना देशी" श्रेणी भी मानी जाती थी। जबकि कुछ का तर्क है ऐसे संगठन मुख्यतः विभिन्न तरह के मालों के व्यापारी थे ना कि सौदागरों का एक निगम। कन्नड आयावोले के विस्तृत अध्ययन करने से पता चलता है कि ये निगम एक या दो जिलों तक फैले हुये, छोटे व काम चलाऊ संघ थे। संगठन में शुरुआत

में हो सकता है कि पांच सौ सदस्य रहे हों। लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि व्यापार और वाणिज्य के विकास के साथ बीरा बंननजाज (आयावोले की व्यापारिक श्रेणी) के काम का दायरा अंतरक्षेत्रीय था और 900 के 1500 ई. के बीच उनके गहन सामाजिक-आर्थिक हितों का विकास हुआ था। वे उत्तर में भलवानी (महाराष्ट्र के संगली जिले में) से दक्षिण में कायलपट्टीनम (तमिलनाडु में) तक फैल गये। पांच सौ की संख्या एक तरह से पारंपरिक हो गई थी जब कि श्रेणी काफी बड़ी हो चुकी थी और इसके सदस्य सभी क्षेत्र, धर्म और जाति से थे। इसी संदर्भ में नानादेशी शब्द इस संगठन के लिए इस्तेमाल किया जाने लगा।
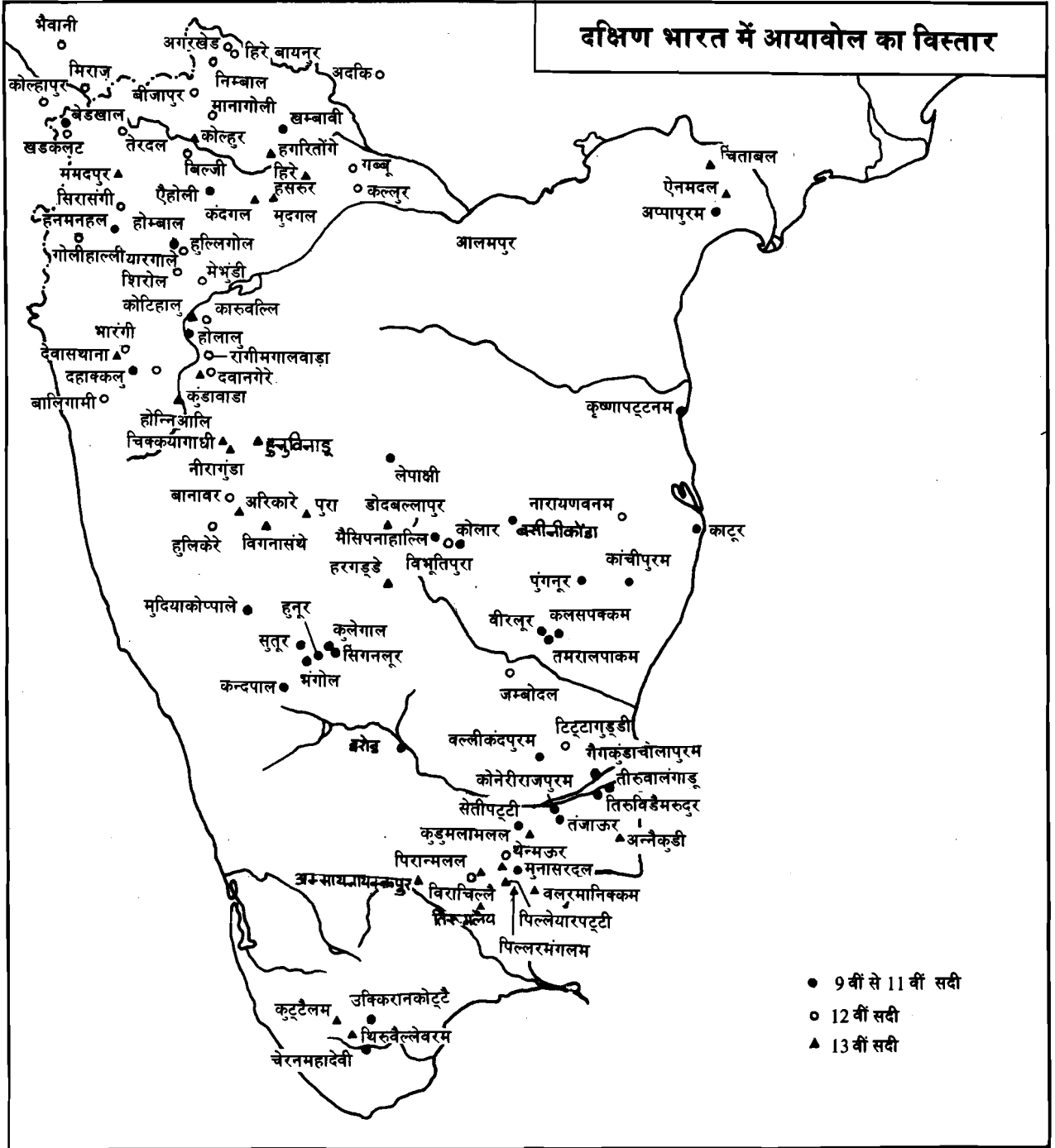
अपने विस्तार के दौरान आयावोले श्रेणी के सदस्य स्थानीय बाजार नगरम के संपर्क में आए और आस-पास के क्षेत्रों से कृषि उत्पादों को इकट्ठा करके और दूसरी जगह से लाए गए माल का वितरण करके इस तरह की व्यापारिक गतिविधियों को बढ़ाया। आयावोले का व्यापारिक प्रभाव दक्षिण भारत के बाहर तक फैल गया। बरमा, जावा, सुमात्रा और श्रीलंका से मिले अभिलेखों से इस बात का पता चलता है। जैसे-जैसे आयावोले की व्यापारिक गतिविधियां बढ़ती गयीं इसके कुछ सदस्य बहुत धनी और शक्तिशाली हो गये और उन्होंने समाया चक्रवर्ती की उपाधि प्राप्त कर ली जिसका मतलब है व्यापारिक संगठन का सम्राट। इससे यह भी इंगित होता है कि उत्तर के समान दक्षिण में भी कुछ व्यापारी श्रेणियों को अपने नियंत्रण में करने की कोशिश करते थे।

दक्षिण भारत का दूसरा महत्वपूर्ण व्यापारिक संघ था मणिग्रमण। इसका उदय नौवी सदी में केरल के तट पर हुआ था। जैसे-जैसे यह आयावोले के संपर्क में आया इसकी अंतर्क्षेत्रीय गतिविधियां बहुत बढ़ गयीं और यह प्रायद्वीप के बहुत बड़े भाग तक फैल गया। मलाया में तकुआपा से नौवीं सदी का एक तमिल अभिलेख यह बताता है कि यह लम्बी दूरी के समुद्री व्यापार में शुरू से ही लगा था।

अंजुवन, दक्षिण भारत का एक अन्य व्यापारिक समूह था। यह शायद विदेशी व्यापारियों का संगठन था ना कि पांच समुदायों या जातियों का समूह जैसा कि कुछ विद्वान मानते हैं। मणिग्रमण के समान इन्होंने भी अपनी व्यापारिक गतिविधियां केरल तट पर आठवीं या नवीं सदी में शुरू की थी और ग्यारहवीं सदी तक दूसरे तटीय क्षेत्रों में फैल गयी। इन्होंने स्थानीय सौदागरों के साथ-साथ आयावोले और मणिग्रमण के साथ सम्पर्क बनाये रखा।

श्रेणियां काफी महत्वपूर्ण हो गई थीं। इसका संकेत इस बात से मिलता लगता है कि ऐसी कोशिशें की जाती थीं कि विभिन्न निगम के विभिन्न व्यापारियों की उच्च वंशावली का पता लगाया जाए। आयावोले के बीराबंननजाज को वसुदेरा की जाति का बताते हैं। उनकी तुलना महाकाव्यों के नायकों से की जाती थी। सीलाहार राजा गन्दरदित्या के ईसवी 1130 के कोल्हापुर के शिलालेख में बीराबंननजाज की प्रशस्ति का एक उदाहरण देखा जा सकता है।

"उनकी जय हो। जो पांच सौ विश्व प्रसिद्ध महान नायकों के पदचिन्हों पर चले, जो कि बनंनजाज के द्वारा बनाए गए नियमों पर चलें, जिनमें सच्चाई, शुद्ध आचरण, अच्छा व्यवहार, राजनीतिक सूझ बूझ, भद्रता और व्यापारिक ज्ञान है। जो कि अपने शौर्य से भरे थे, जिनका जन्म वासुदेव, खण्डाली और मूलभद्र की जाति में हुआ था। जो लड़ाई में अपराजेय थे, जो ब्रह्मा के समान चौंसठ कलाओं में पारंगत हैं, नारायण के समान वे चक्रधारी हैं और रूद्र के समान जिनमें दुनिया को नष्ट करने की शक्ति है। जो कि दृढ़ता में राम की तरह है, अर्जुन के समान पराक्रमी है, भीष्म की तरह सदाचारी है, भीम के समान साहसी है, युधिष्ठर की तरह धर्मात्मा है, कर्ण के समान दानवीर है तथा सूर्य के समान तेजस्वी है। संक्षेप में दक्षिण भारत का विशाल व्यापारिक तंत्र अनेक व्यापारियों संगठनों द्वारा नियंत्रित था जो कि आपस में सहयोग और सामंजस्य के साथ काम करते थे। संघों के मुखियाओं ने व्यापार तथा व्यापारिक संगठनों पर नियंत्रण के द्वारा राजसी घरानों से घनिष्ठता के संबंध बना लिए तथा समाज में यश एवं नाम कमाया।"

4.7 व्यापारियों तथा शिल्पकारों के बीच संबंद्ध

समकालीन स्रोतों में व्यापारियों तथा शिल्पकारों जो कि वाणिज्य में [illegible] दूसरे पर परस्पर निर्भर वर्ग थे के संबंधों के सही स्वरूप का प्रमाण नहीं मिलता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है [illegible] के शिल्पकार जैसे बुनकर, धातुकर्मी आदि स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे या व्यापारियों, जो कि उन्हें धन तथा कच्चा माल या दोनों उपलब्ध कराते थे, के आदेशानुसार कार्य करते थे। परन्तु इस बात के प्रमाण हैं कि व्यापारियों द्वारा कच्चे माल तथा तैयार माल के संग्रहण/संगठन पर अधिक नियंत्रण कायम करने से शिल्पकारों की गतिविधियों पर उनका प्रभाव काफी बढ़ गया।

अल-बरूनी जो ग्यारहवीं शताब्दी में भारत आया, तथा लक्ष्मी-धारा जो कि बारहवीं शताब्दी का एक विधि शास्त्री था हमें बताते हैं कि शिल्पकार व्यापारियों के बीच रहते थे। इससे पता चलता है कि व्यापारी शिल्पकारों को कच्चा माल तथा पूंजी उपलब्ध कराते

थे, जो कि व्यापारियों के निर्देशों तथा मांग के अनुसार माल तैयार करते थे, तमिलनाडु में इरोडे में पाया गया ग्यारहवीं शताब्दी का एक अभिलेख व्यापारियों द्वारा शिल्पकारों को शरण दिए जाने की चर्चा करता है तथा इस बात से शिल्पकारों की व्यापारियों पर निर्भरता प्रदर्शित होती है। जैसे-जैसे व्यापार तथा वाणिज्य का विस्तार हुआ व्यापारियों ने खरीद-फरोख्त के वाणिज्यिक तंत्र पर एकाधिकार स्थापित करने की कोशिश की। इसके कारण शिल्पकारों द्वारा स्वयं अपने माल को बेचने की क्षमता को हानि पहुंची। परन्तु कुछ ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनके अनुसार तेली तथा बुनकर अपने माल को स्वयं बेचते थे जिसके कारण वे मंदिरों तथा पुजारियों को अनुदान देने की क्षमता तथा धन पा सके। यह कहा जा सकता है कि प्रारंभिक मध्ययुगीन काल में शिल्पकार बड़े व्यापारियों पर आर्थिक रूप से निभर थे।

बोध प्रश्न 2

1) प्रशासन में व्यापारियों की भूमिका का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित कथनों पर सही ✓ या गलत × का निशान लगाएं :

i) अल-इदरीरी तथा मारको पोलो भारतीय व्यापारियों की ईमानदारी की प्रशंसा करते हैं।

ii) इस काल में हाथ से श्रम करने वाले लोगों को समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता था।

iii) राज्य द्वारा संघों की स्थापना व्यापार को नियंत्रित करने के लिए की गई थी।

iv) दक्षिण भारत का एक व्यापारिक संघ मणिग्रामणम केरल के तट पर स्थापित हुआ।

v) इस काल में शिल्पकार व्यापारियों की गतिविधियों पर नियंत्रण रखते थे।

3) व्यापारियों के संघों को परिभाषित कीजिए। इन श्रेणियों के मुख्य कार्यों को सूचीबद्ध कीजिए।

....

....

....

....

....

4) दक्षिण में व्यापारिक गतिविधियों के विस्तार में अयवोल की क्या भूमिका थी?

....

....

....

....

....

- -

- -

- -

4.8 सारांश

व्यापारी को उत्पादक तथा उपभोक्ता के बीच महत्वपूर्ण कड़ी मानते हुए इस इकाई ने रेखांकित किया :

- प्रारंभिक मध्ययुगीन भारतीय समाज तथा अर्थव्यवस्था में व्यापारी तथा सौदागरों की स्थिति में सापेक्षिक उतार-चढ़ाव रहा। उनकी स्थिति उस समय के वाणिज्यिक गतिविधियों से जुड़ी थी।
- 700 से 900 ईसवी में व्यापार के सापेक्षिक पतन से धनी और स्वतंत्र सौदागर वर्ग का अन्त तो नहीं हुआ किन्तु यह वर्ग कम हो गया।
- 900 से 1300 ईसवी में व्यापार तथा वाणिज्य के पुनरुत्थान के साथ सौदागरों का एक बार फिर प्रभावी होना और व्यापारियों ने काफी धन इकट्ठा कर और धार्मिक प्रतिष्ठानों को उपहार देकर समाज में सम्मान प्राप्त किया। कई व्यापारी प्रशासनिक ढांचे में काफी प्रभावी हो गए।
- क्षेत्रीय सौदागर वर्गों का उदय।
- व्यापारियों के संगठनों जैसे श्रेणियों का अस्तित्व में आना जो व्यापारिक गतिविधियों को नियंत्रित करती थीं।
- श्रेणियों की अंतर्क्षेत्रीय और अंतर्देशीय गतिविधियां, विशेषकर दक्षिण भारत में।
- भ्रमणशील व्यापारियों की भूमिका।
- बड़े सौदागरों का कारीगरों और दस्तकारों पर बढ़ता प्रभाव।

4.9 शब्दावली

नगरम् : देखें इकाई 2

नगरतार : नगरम् का सदस्य

नाइगमा : व्यापारिक श्रेणी

नानादेशी : व्यापारियों की श्रेणी जिसके सदस्य विभिन्न क्षेत्रों और जाति के हों

सार्थवाह : कारवां का नेता या प्रमुख

श्रेणी : व्यापारियों, कारीगरों और दस्तकारों के संघ के लिए एक प्रचलित नाम

श्रेणीवाला : संघों द्वारा संचालित सेना

श्रेष्ठी : व्यापारी

प्रशस्ति : अतिशयोक्ति से परिपूर्ण विवरण।

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) i) × ii) ✓ iii) ✓ iv) × v) ✓श्रेष्ठी थोक का व्यापारी था।
2) इस काल में उधार देना एक दक्ष व्यापारिक पद्धति के रूप में विकसित हो रहा था। देखें भाग 4.4।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में सौदागरों के समाज में प्रभाव और प्रशासन में उनकी स्थिति शामिल होना चाहिए। देखें भाग 4.5।

2) i) ✓ ii) ✓ iii) × iv ✓ v) ×
कारीगर ज्यादातर सौदागरों पर निर्भर थे।

3) श्रेणियां एक ही प्रकार के व्यापार में संलग्न व्यापारियों की स्वैच्छिक संस्थाएं थीं। श्रेणी का मुख्य कार्य दाम निर्धारित करना, कार्यक्षेत्र तय करना और बाजार के नियमों को तय करना होता था। देखें उपभाग 4.6.1)।

4) आयावोले दक्षिण भारत में सौदागरों की श्रेणी थी। यह सौदागरों का एक मजबूत समूह था और इसने दक्षिण भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी व्यापार को बढ़ाने में मदद की।

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

रोमिला थापर : *भारत का इतिहास*

आर.एस. शर्मा : *भारतीय सामंतवाद*

ए.एल. बाशम : *अद्भुत भारत*

शिव शंकर मिश्र : *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास*

R.S. Sharma : *Urban Decay in India C-300-C.1000 New Delhi, 1987.*

R.S. Sharma : *Perspective in Social and Economic History of Early India, New Delhi, 1983.*

V.K. Jain : *Trade and Traders in Western India (A.D. 1000-1300), Delhi, 1990.*

11. 8वीं शताब्दी के जलपोत